

## मानव और विद्यालय

### □ माइकेल ऑकशॉट

इस पाठ (टेक्सट) के लेखक माइकेल ऑकशॉट है। यह उनके एक लम्बे लेख “एजुकेशन : द एंगेजमेंट एण्ड इट्स फ्रस्ट्रेशनस्” से लिये गये अंश हैं। पहले हिस्से में ऑकशॉट मानव के बारे में अपनी धारणा की अभिव्यक्ति और स्थापना करते हैं। दूसरे हिस्से में विद्यालय की अवधारणा की बात करते हैं। ऑकशॉट की विद्यालय की धारणा में कई चीजें ऐसी हैं जो भारत में विद्यालयों की मध्यमवर्गीय धारणा के विपरीत हैं। उदाहरणार्थ: ऑकशॉट का कहना है कि सच्ची शिक्षा शिक्षार्थी को ऐसा कुछ नहीं देती जो उसे दूसरों की तुलना में कोई अतिरिक्त भौतिक लाभ दिलवा सके। दूसरी तरफ मध्यमवर्ग अपने बच्चों की शिक्षा में निवेश ही लाभार्जन के लिए करता है। इसी तरह ऑकशॉट की बहुत-सी धारणायें हाल के वर्षों में जोर-शोर से प्रचारित नरम-शिक्षणशास्त्र, जो कि दिमागी और भावनात्मक दोनों पहलुओं से नरम है, का भी विरोध करती हैं। जैसे ऑकशॉट का यह कहना कि सीखना सीवन-विहीन चौगा नहीं, सायास करने की चीज है, या कि यह कहना कि विद्यालय अलग और फासले पर ‘आश्रम’ जैसी चीज है। जबकि नरम-शिक्षण शास्त्र में सीखना स्वतः होने वाली चीज है और वह जो “फासले पर” है, घटिया विद्यालय है।

प्रो. माइकेल ऑकशॉट मूलतः राजनीति दर्शन के प्राध्यापक थे। शिक्षा दर्शन में वे उदार शिक्षा (लिबरल एजुकेशन) के हिमायती थे। प्रस्तुत आलेख में उन्होंने अपनी बात बेलाग एवं पुरजोर तरीके से कही है। आशा है लेख का यह अंश नरम शिक्षण-शास्त्र के जमाने में शिक्षा के गंभीर पक्ष की तरफ संकेत करेगा।

### इंसान होना एवं शिक्षा

क्या इंसानी जीवन पेड़ की तरह बढ़ने, फल देने, फिर मुरझा कर सूख जाने की प्रक्रिया है? पेड़ के बीज में इस सारी प्रक्रिया की संभावना छुपी रहती है। परिवेश मिलने पर यह पूरी प्रक्रिया घटित हो जाती है, अपने आप। क्या इंसानी जीवन भी ऐसे ही बढ़ने की प्रक्रिया है? या फिर इंसानी जीवन किसी भी जीव की अपने परिवेश के प्रति सतत क्रियाशील रहने की तरह है? एक ऐसी प्रक्रिया जो जन्मजात मिले जैनेटिक उपकरणों द्वारा नियंत्रित एवं तय की जाती है। यदि इंसानी जीवन केवल बढ़ने की प्रक्रिया होती या फिर केवल जैनेटिक उपकरणों से तय की गई प्रतिक्रियाओं की शृंखला भर होती तो नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच किसी ऐसे संवाद की जरूरत न होती जो नवांगतुक इंसान को इंसानी काम काज एवं तौर-तरीकों से परिचित करवाने के लिए ही किया जाता हो, जिससे कि नवांगतुक इंसान भी मानवीय क्रिया-कलापों और तौर-तरीकों में शामिल हो सके। यदि इंसानी जीवन बढ़ने की प्रक्रिया भर होता तो प्रत्येक बालक स्वयं ही समस्त इंसानी क्रियाकलापों में भागीदारी ‘सीख’ जाता, अतः शिक्षा की जरूरत ही ना होती।

पर ऐसा है नहीं। मानव जीवन न तो बढ़ने की प्रक्रिया भर है और न ही परिवेश से प्रतिक्रिया भर। मानव जीवन में हम बहुत कुछ कर्म करते हैं। वे कर्म केवल बढ़ने की प्रक्रिया भर या परिवेश से प्रतिक्रिया भर नहीं होते। वे कर्म क्या करना है और क्या नहीं करना, इस बारे में चुनाव पर निर्भर करते हैं। हमारे कुछ करने और न करने के चुनाव के पीछे भी कोई कल्पना होती है, कुछ परिणाम की इच्छा होती है। जो हम करना चाहते हैं उस पर हमारे विचारों का प्रभाव पड़ता है, हमारी समझ का प्रभाव पड़ता है और नियम-कायदों का प्रभाव पड़ता है। मानव जीवन में वांछनीय और अवांछनीय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार के जीवन में (जिसमें ये सब कुछ हो) केवल जैनेटिक उपकरण द्वारा तयशुदा प्रतिक्रिया के सहारे काम नहीं चल सकता। मानव जीवन में सक्रिय रूप से भागीदारी के लिए ये सब चीजें सीखनी होती हैं, ये बीज से पौधे की तरह स्वतः विकसित नहीं हो जाती।

इंसान को तो आम-सी दीखने वाली दक्षतायें भी सीखनी पड़ती हैं। उनमें भी वांछनीय और अवांछनीय का सवाल जुड़ा होता है। बालक का चलना सीखना, चिड़िया के उड़ने की तरह नहीं है। बालक के लिए सिर्फ चलना भर पर्याप्त नहीं है। उसे कैसे

चलना है यह भी सिखाते हैं। उसे बोलते हैं - “पैर घसीट कर मत चलो”, “सीधे चलो”, आदि। इसका आशय यह है कि मानव समाज में चलने के भी तौर-तरीके हैं। मोर का नाचना या कोयल की कूक तो उनकी जैनेटिक प्रवृत्ति हो सकती है, पर भरतनाट्यम और राग भैरवी जैनेटिक प्रवृत्ति नहीं हैं। ये सदा नहीं थे, किसी समय विकसित हुए और सीखने पड़ते हैं। इनमें तो रस लेना भी सीखना पड़ता है।

शिक्षा के उपक्रम की जरूरत ही इसलिए होती है क्योंकि कोई भी इंसान पैदा नहीं होता। न ही इंसान बनने की कोई ऐसी बीजरूप क्षमता होती है जो विकसित होकर अपने आप वास्तविकि इंसानियत बन जाये। मानव शिशु कोई ऐसा प्राणी भर नहीं है जो परिवेश से अनुकूलन की खोज में निकला हो, जिससे कि वह अपने अस्तित्व को बनाये रख सके। वह एक ऐसा प्राणी है जो सोचना सीख सकता है, समझना सीख सकता है, जो मानवीय क्रिया-कलापों में शामिल हो सकता है। उनको और समृद्ध कर सकता है और इस तरह मानव बन सकता है। इसीलिए पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच ऐसे संवाद की जरूरत होती है जिससे नये पैदा होने वाले इंसान को इंसानी तौर-तरीकों से परिचित करवाया जा सके, उनमें शामिल किया जा सके। और पुरानी और नई पीढ़ी के बीच इसी संवाद का नाम शिक्षा है।

तो अब यह देखें कि दो पीढ़ियों के बीच चलने वाले इस ‘शिक्षा’ नामक संवाद में होता क्या है? पहली बात तो यह है कि संवाद प्रतिनिधि इंसानों एवं इंसानी तौर-तरीकों में प्रवेशार्थियों के बीच चलता है। जिसमें नयी पीढ़ी को मानवीय विरासत की उपलब्धि के रूप में ज्ञान, समझ, विश्वासों और दक्षताओं के क्षेत्र में उपलब्धियों से परिचित करवाया जाता है। एक तरह से पुरानी पीढ़ी यह विरासत नई पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

यदि इस विरासत में भौतिक वस्तुएं होती तो हस्तांतरण केवल वे वस्तुएं दे देने भर की औपचारिकता होती। चीजें उठाई और दे दीं। पर इस विरासत में तो भौतिक वस्तुएं नहीं हैं। इस विरासत में तो इंसानी क्रिया-कलाप हैं, इच्छाएं और आंकाक्षाएं हैं, भावनाएं हैं, छवियां हैं, मत और विश्वास हैं, सोचने के तरीके हैं, रीति-रिवाज और परम्परायें हैं। संक्षेप में ऐसी मानसिक स्थितियां हैं जिनमें प्रवेश केवल सीखने के माध्यम से ही संभव है।

यदि इस विरासत में केवल मानसिक स्थितियां भर ही होतीं तो इनमें प्रवेश सम्मोहन (हिप्नॉटिज्म) के द्वारा भी हो सकता था। किसी प्रकार की ‘चिकित्सा’ से भी हो सकता था। बिजली के झटकों तथा नींद में सीखने की विधियों से भी हो सकता था। पर शिक्षा में ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि ये ऐसी मानसिक अवस्थाएँ

हैं जिनमें समझना जरूरी है। केवल तभी इन अवस्थाओं को महसूस कर सकते हैं (इनका आनन्द ले सकते हैं) जब इनको समझ सकें। इंसान होने का अर्थ यह है कि सीखने के इन क्रियाकलापों में जानबूझ कर शामिल हुआ जाये। अतः इन मानसिक अवस्थाओं में प्रवेश (इनसे परिचय) प्रवेशार्थी को ऐसे क्रियाकलापों में लगाकर ही संभव है जहां वह समझना सीख सके।

तो इस विरासत के लेन-देन में पुरानी पीढ़ियों द्वारा रची गई, बनाई गई भौतिक चीजें नई पीढ़ी को नहीं दी जाती। न ही नई पीढ़ी को नकल करने की कला सिखाई जाती है। यह संवाद तो नयी पीढ़ी को इंसानी तौर-तरीकों से व्यवहार करना सिखाने के लिए है। बने बनाये विचार, छवियां, भावनाएं, विश्वास आदि ग्रहण कर लेने का नाम शिक्षा नहीं है। शिक्षा का अर्थ है देखना-सीखना, सुनना-सीखना, सोचना-सीखना, महसूस करना, कल्पना करना, विश्वास करना, समझना, चुनना और अपेक्षाएं करना सीखना। शिक्षा का अर्थ है मानवीय मानस अवस्था में प्रवेश चाहने वालों का अपने आपको इंसान के रूप में पहचानना सीखना और अपने आपको इंसान के रूप में देखना। और अपने आपको इंसान के रूप में देखना सीखने का एक ही तरीका है : इंसानी विरासत के ज्ञान के प्रकाश में अपने आप को देखना। इंसानी व्यवहारों और मूल्यों के दर्पण में अपने आप को देखना। इंसानी काम-काज के माध्यम से अपने आपको पहचानना। और फिर अपने कर्मों और विचारों से अपनी छवि इंसानी दुनिया को प्रस्तुत करना। यह छवि प्रत्येक व्यक्ति का इंसान होने का अपना तरीका होती है। इंसान की परिभाषा में उसका व्यक्तिगत योगदान होती है। शिक्षा का काम है सीखने वाले को इन सब चीजों में मदद करना।

## विद्यालय की धारणा

विद्यालय की धारणा में पहली बात तो एक गंभीर और व्यवस्थित शुरूआत करने की है। यह शुरूआत बच्चे को एक बौद्धिक, कल्पनाशील, नैतिक एवं भावनात्मक विरासत में दीक्षित करने की शुरूआत है, उन बच्चों के लिए जो इस दीक्षा के लिए तैयार हैं। विद्यालय जाने से पहले भी बच्चा सीखता रहता है। यह सीखना अनायास ही समझ की रोशनी के टुकड़े मिल जाने जैसा है। ये अन-खोजे ज्ञान की प्राप्ति के क्षण होते हैं। बिना पूछे प्रश्नों के अधूरे समझे उत्तर होते हैं। विद्यालय की धारणा में निहित है एक सुविचारित शिक्षाक्रम, जो विद्यालय पूर्व की समझ पर

अध्यारोपित (सुपरइम्पोज्ड) होता है। यह सुविचारित शिक्षाक्रम शिक्षार्थी के विचारों को दिशा देता है, नियंत्रित करता है; उसके ध्यान एवं प्रयासों को केन्द्रित करता है और शिक्षार्थी को चीजों को देखने के लिए, अलग-अलग पहचानने के लिए प्रोत्साहित करता है। 'विद्यालय की धारणा' इस बात की स्वीकारोक्ति है कि शिक्षा में पहली और सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह समझना है कि 'सीखना' कोई 'सीवन-विहीन चोगा'<sup>1</sup> नहीं है, कि संभावनायें अनन्त नहीं हैं।

दूसरी बात, विद्यालय माने है अध्यवसाय के द्वारा सीखने में लगना। यह मुश्किल काम है, क्योंकि इसके लिए प्रयत्न करना होता है। खेल-खेल में किये जाने वाले कामों को तो तात्कालिक संतुष्टि न मिलने पर तुरंत छोड़ दिया जाता है; पर यहां सीखने में प्रयासरत रहने की जरूरत पड़ती है, जो सीखा जाता है उसे समझना भी पड़ता है और याद भी रखना पड़ता है। यही अध्यवसाय, यही तात्कालिक दुल-मुल झुकावों के विपरीत अनुशासन, सजगता से ध्यान लगाने और उसे केन्द्रित रखने की अत्यावश्यक आदत को विकसित करता है; धैर्य, सूक्ष्म और सटीक पर ध्यान देना सिखाता है, साहस और बौद्धिक ईमानदारी सिखाता है। इसी अध्यवसाय से शिक्षार्थी यह समझ पाता है कि कठिनाइयों से बचकर निकलने से काम नहीं चलेगा, उन पर पार पाना होगा। उदाहरण के लिए, हमारी विपुल और पेचीदा सभ्यता को ही लें। इस सभ्यता में मानवीय समझ, चिंतन के तरीके, भावना एवं कल्पनाशीलता, आदि सभी क्षेत्रों में हमारी विरासत (पूर्व पीढ़ियों द्वारा संचित ज्ञान) से परिचय अधिकतर पुस्तकों और इंसानों के कथनों के माध्यम से ही होता है। पर पढ़ना और सुनना-सीखना तो एक श्रमसाध्य काम है, और सूचना प्राप्ति से इसका कोई विशेष संबंध नहीं है। पढ़ना और सुनना तो विवेकशील चेतना की सायास अभिव्यक्ति को ग्रहण करना है, समझना है, उसका पुन-चिंतन है। यह तो भाव के सूक्ष्म-भेद की पहचान करना सीखना है; और वह भी बिना डिक्कोडिंग (डिक्कोडिंग) के पागलपन में गर्त हुए। यह तो दूसरे के विचारों को अपने दिमाग में अभिनीत होने की छूट देना है। इस तरह पढ़ने में वे विचार हमारे अपने 'आप' का, हमारी समझ का, हमारी अपने बारे में समझ का ही एक हिस्सा बन जाते हैं। तो फिर पढ़ना सीखना है : सतत् चकित चेतना का अपनी इस नई बनती जा रही छवि को समर्पण करना सीखना, इस छवि को समझना सीखना और इस छवि को रिस्पोण्ड करना सीखना। और 'पढ़ना' तो लगन से पढ़कर ही सीखा जा सकता है। उन रचनाओं को पढ़कर जो हमारी तात्कालिक

चिंताओं से दूर की हों। तात्कालिक चिंताओं पर लेखन को पढ़कर 'पढ़ना' सीखना लगभग असंभव है।

विद्यालय की धारणा का तीसरा पहलू है 'तत्क्षणिकता' से दूरी। स्थानीय संसार, उसके 'तत्क्षणिक सरोकारों' और उस दिशा से फासला जहां वह ध्यान खींचना चाहता है। और "स्कूल" शब्द का यही वास्तविक अर्थ है, न कि 'आराम' और 'खेल' (जैसा कुछ लोग कहना चाहते हैं)। विद्यालय वह विशेष स्थान है जहां नये वारिस का अपनी नैतिक और बौद्धिक विरासत से परिचय होता है। परिचय इस विरासत के उस रूप से नहीं जो बाहर की दुनिया के कार्यव्यापार में बरता जा रहा है। (रोजमर्रा के कामों में इस विरासत का बड़ा हिस्सा स्मृति से ओझल रहता है, संक्षिप्त और सरलीकृत किया जाता है। यहां तो यह विरासत केवल टुकड़ों में प्रस्तुत होती है, तात्कालिक उपक्रमों में निवेश के लिए।) पर विद्यालय में इस थाति से परिचय इसकी पूर्णता में, इसके निर्बाध रूप से होता है। इसके अपरिसीमित रूप से परिचय होता है। विद्यालय में शिक्षार्थी की अनुप्रेरणा अपने साथ लाये अव्यवस्थित रुझान नहीं बनते, बल्कि वहां वह उन नव-परिचित उत्कृष्टताओं और अभिलाषाओं से अनुप्रेरित होता है जो अभी तक उसके सपने में भी नहीं थीं। यहां उसका सामना जिन्दगी के मिलावटी सवालों के पक्षपातपूर्ण उत्तरों से नहीं बल्कि ऐसे प्रश्नों से होता है जो उसके जेहन में पहले कभी नहीं आये होते। विद्यालय में उसे नयी अभिरूचियां मिल सकती हैं और उनमें श्रेष्ठता प्राप्त करने के अवसर मिल सकते हैं, बिना तत्काल परिणाम प्राप्ति की अनिवार्यता से विकृत हुए। यहां वह नई दिशाओं में संतुष्टि खोजना सीख सकता है, जिन दिशाओं का अभी तक उसे भान भी न था।

उदाहरण के लिए इस मानवीय विरासत का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भाषायें हैं, और विशेष रूप से नये प्रवेशार्थी की मातृभाषा है। अपनी मातृभाषा के प्रचलित रूप को और अपने जैसे अन्य लोगों से संप्रेषण के माध्यम के रूप में, इसे वह पहले ही सीख चुका है। पर विद्यालय में वह इससे कुछ अधिक सीखता है, जो इससे कुछ भिन्न भी होता है। विद्यालय में भाषा अध्ययन का अर्थ है शब्दों को विचार की प्रभाविता के उपकरण के रूप में देखना; और अधिक स्पष्ट और सटीक तरीके से सोचना सीखना, स्वयं भाषा के संसाधनों को समझ की अभिव्यक्ति के रूप में देखना सीखना। क्योंकि भाषा को केवल वर्तमान संप्रेषण के साधन के रूप में देखना तो वैसा ही है जैसे कोई वारिस विरासत में मिले अपने उस महल को जो मानवीय ज्ञान, भावनाओं, सपनों और अभिलाषाओं से भरा पूरा हो, मात्र सर छुपाने की जगह के रूप में देखता हो। संक्षेप में विद्यालय अलग एवं फासले पर एक 'आश्रम' की तरह है जहां उत्कृष्टता का संगीत सुना जा सकता है, क्योंकि सांसारिक प्रमाद

1. 'सीमलेस रोब' कहने में बल बिना जोड़ के होने पर है, विभेद करने की संभावना न होने पर होता है।

और पक्षपात को यहां चुप करा दिया जाता है । या उसे मंद कर दिया जाता है ।

अगली बात, विद्यालय की धारणा में निहित है, शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच व्यक्तिगत हस्तान्तरण, विद्यालय का एक मात्र अपरिहार्य उपकरण शिक्षक ही है। विभिन्न प्रकार के उपकरणों पर वर्तमान-कालीन बल लगभग पूरी तरह से विद्यालयनाशी है । शिक्षक वह है जिसमें मानवीय विरासत का कोई हिस्सा या पहलू जीवंत है । उसके पास हस्तान्तरण के लिए कुछ ऐसी चीज है जिस में वह पारंगत है; (“अज्ञानी शिक्षक” अन्तरविरोधयुक्त विचार है), और शिक्षक वह है जिसने सिखाई जाने वाली चीज के महत्व पर विचार किया है, साथ ही यह भी सोचा है कि उस चीज के हस्तान्तरण का बेहतरीन तरीका क्या है; और यह हस्तान्तरण किसी ऐसे शिक्षार्थी को किया जाता है जिसे शिक्षक जानता है । शिक्षक स्वयं किसी ऐसी परंपरा या कला का रक्षक है जिस में मानवीय समझ वास करती है, जीवन्त है । और नव-शिक्षार्थियों को हस्तान्तरित करने में सतत् रूप से नव-सृजित होती रहती है। ‘पढ़ाने’ का अर्थ है कि कुछ महत्वपूर्ण जो शिक्षक सिखाना चाहता था, किसी तरह से शिक्षार्थी ने ग्रहण किया है, समझा है, स्मरण किया है । अतः ‘शिक्षण’ एक वैविध्यपूर्ण कर्म है जिसमें कई गतिविधियां समाहित हो सकती हैं; जैसे इंगित करना, सुझाना, प्रेरित करना, फुसलाना, प्रोत्साहित करना, निर्देशित करना, चिन्हित करना, वार्तालाप, आदेश देना, सूचना देना, वर्णन करना, व्याख्यान देना, प्रदर्शन, अभ्यास, जांचना, परीक्षा लेना, आलोचना करना, संशोधन करना, आदि-आदि; वास्तव में वह सब कुछ जो समझ के विकास में बाधक न हो । इसी तरह (सीखना) भी विविध रूपों में हो सकता है; देखने में, सुनने में, पढ़ने में, सुझाव ग्रहण करने में, निर्देशन को मानने में, याद करने में, प्रश्न करने में, विमर्श में, प्रयोग में, अभ्यास में, आदि आदि । वह सब कुछ जो चिंतन और समझने के प्रयास में बाधक न हो, सहायक हो ।

अंत में विद्यालय की धारणा शिक्षकों और शिक्षार्थियों के एक समुदाय की धारणा है; जो न बहुत छोटा है न बहुत बड़ा । जिसकी अपनी परंपरायें होती हैं; जो निष्ठा, प्रेम और आदर की भावनार्यें जगाता है । एक ऐसा समुदाय जो नवागंतुकों को मानव होने की महानताओं में और मानव होने के बंधनों में दीक्षित करने के लिए समर्पित है । विद्यालय वह अलमा मतेर (पोषक मां) है जो अपने बच्चों को गर्व और स्नेह से याद करती है और कृतज्ञता के साथ बच्चों द्वारा याद की जाती है । अच्छे विद्यालय की पहचान होती है कि वहां सीखना स्वयं ही अपने ध्येय के रूप में, परम संतोष प्राप्ति के रूप में देखा जाता है, वहां सीखने को ग्राह्य बनाने के

लिए किसी बाहरी मुलम्मे की जरूरत नहीं होती है । अच्छे विद्यालय की यह भी पहचान होती है कि वह अपने छात्रों को एक स्मरणीय बचपन का तोहफा देता है। ऐसा बचपन नहीं जो शीघ्रता से पार कर गये, किसी अधिक लाभकारी उपक्रम में लगने के लिए । बल्कि ऐसा बचपन जो कृतज्ञता के साथ याद किया जाये । मानवीय अवस्था के रहस्यों-जो कि आत्मबोध एवं बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से संतोषप्रद अस्मिता का उपहार है - में दीक्षित होने के आनन्द से परिपूर्ण काल के रूप में याद किया जाये ।

अतः पीढ़ियों के बीच इस विनिमय का कोई बाहरी ‘उद्देश्य’ या ‘प्रयोजन’ नहीं हो सकता । शिक्षक के लिए यह उसके इंसान होने के उपक्रम का हिस्सा है, और शिक्षार्थी के लिए यह उसके ‘इंसान बनने’ के उपक्रम का हिस्सा है । इस प्रयास में नये आने वाले को कोई विशिष्ट योग्यता से सज्जित नहीं किया जाता । न ही उसे कोई विशिष्ट दक्षता सिखाई जाती है । इससे उसे अन्य लोगों की तुलना में कोई विशिष्ट भौतिक लाभ मिलने का रास्ता भी नहीं खुलता । और न ही इस पूरे उपक्रम का इशारा किसी अंतिम तौर पर ‘पूर्ण मानव-चरित्र’ की तरफ है । इस पीढ़ियों के हस्तांतरण में भागीदार होने वाला हर व्यक्ति मानवीय समझ की विरासत का कोई एक छोटा या बड़ा हिस्सा अपने संरक्षण में ले लेता है । यही वह दर्पण होता है जिसके सामने वह मानव-जीवन के अपने स्वरचित संस्करण को चरितार्थ करता है । शिक्षा का आशय यह या वह दक्षता बेहतर सीखना नहीं है, बल्कि मानवीय अवस्था की समझ है जिसमें जीवित होने का प्राकृतिक तथ्य सतत् रूप से ‘वांछनीय-जीवन’ की छवि से प्रकाशित होता रहे। शिक्षा का आशय यह सीखना है कि कैसे एक ही साथ स्वायत्त भी और मानव जीवन का सभ्य समर्थक भी बना जाये । ♦

एम. ओकशोट, एज्यूकेशन : द एनगेजमेंट एण्ड इट्स फ्रस्टेशन्स, इन एज्यूकेशन एण्ड द डवलपमेंट ऑफ रीजन, आर. एफ. डीयरडेन, पी. एच. हर्स्ट और आर. एस. पीटर्स द्वारा संपादित, आरकेपी, 1975.

प्रस्तुति : रोहित धनकर